डॉ. इबरार खान

मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज, गया- 823001 , बिहार

रामदरश मिश्र की ग़ज़लें : एक अनुशीलन

हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में ग़ज़ल एक अतिमहत्वपूर्ण विधा है। यह पहले हिंदी में नहीं थी। इसके अलावा हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल का बंटवारा तो बाद में हुआ। ग़ज़ल का प्रारंभ अरबी में हुआ। ग़ज़ल अरबी से फारसी फिर फारसी से उर्दू और उर्दू से हिंदी में आई। फिर यह धीरे-धीरे अन्य भारतीय भाषाओं में अलग -अलग विषयों के साथ कही जाने लगी। वर्तमान में यह हिंदी की सशक्त विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है।

जहां तक ग़ज़ल की बात है तो 'ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा की एक काव्य विधा है। ग़ज़ल शब्द भी अरबी भाषा का ही है, जिसका अर्थ औरतों से या औरतों के विषय में बातें करना है।"[1] शुरुआत में भले ही ग़ज़ल में प्यार-मोहब्बत की बातें की जा रही हों लेकिन धीरे – धीरे उसके विषय बदलते चले गए। अडम गोंड़वी ने सत्य ही कहा है-'अब मर्कज़ में रोटी है, मुहब्बत हासिए पर है ।

उतर आई ग़ज़ल इस दौर में कोठी के जीने से।"[2]

इसी बिन्दु पर डॉ. अमरनाथ भी अपना मत रखते हुए कहते हैं 'यह सही है कि आरंभिक ग़ज़ल की दुनिया इश्क और मोहब्बत तक सीमित रही लेकिन बाद में 'इश्क मजाज़ी' के साथ 'इश्क हक़ीकी' को स्थान उसे आध्यात्मिक संवेदना से भी सम्बलित किया।"[3]

अगर हम रामदरश मिश्र की ग़ज़लों को ही देखें तो उसमें विविध विषय हैं। उन्होंने खुद कहा है- 'मेरी ग़ज़लों में कथ्य का वैविध्य है। उनमें प्रेम है, प्रकृति है, शहर है, गाँव है, घर-परिवार है (बल्कि यह बहुत ज़्यादा है), व्यक्तिगत जीवन यात्रा के कई संदर्भ हैं सामाजिक जीवन की छवियाँ हैं, राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों के चेहरे हैं, आम जीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति है, ऊंचे लोगों के जीवन की कृत्रिमताओं की पहचान है।"[4] रामदरश मिश्र ग़ज़ल पर अपने विचार रखने के साथ – साथ उसके प्रति झुकाव को भी स्वीकार करते हैं। ग़ज़ल के प्रति उनका झुकाव भले ही नवें दशक में हुआ लेकिन उनकी पहली ग़ज़ल 'ये आवारा बदल जो छाए हैं' 1954 ई. में लिखी गई थी। 1954-1957 के बीच उनकी आठ ग़ज़लें प्रकाश में आईं।

अब हम रामदरश मिश्र की ग़ज़लों पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि उसके विविध विषय हैं। किस तरह से सियासत में वादे किये जाते हैं, उनको पूरा नहीं किया जाता, उसे यह साफ तौर पर देखा जा सकता है-'रोटी नहीं पानी नहीं सपने नहीं। वादे सियासत के कभी से सह रही ये बस्तियां"[5]

इसी तरह से धार्मिक उन्माद, सांप्रदायिकता, सांप्रदायिक दंगे जैसे गंभीर व संवेदनशील मुद्दे पर भी अपनी बात कहने से मिश्र जी पीछे नहीं हटते।

'फिर खुदा के नाम पर फूटे ज़हर शैतान के

नयन भर आए व्यथा से राम के रहमान के"[6]

हम भले ही धर्म के नाम पर राम-रहीम के नाम पर विवाद करें। अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहें और उस पर विवाद करें लेकिन सभी धर्मों का मूल उद्देश्य एक ही है-

'गीता कभी क़ुरान कभी बाइबिल में पैठ

सच का जलाल एक-सा पाता है आदमी"[7]

उनके हृदय में मानवीय संवेदना भी है। वे उन लोगों से कहते हैं जो लोगों से मुंह फेरकर आकाश की तरफ देखते हैं। वे भले ही कितनी बड़ी बुलंदी पा लें, लोगों की निगाह से गिरते चले जाते हैं।

'फेरकर लोगों से मुंह अब देखते आकाश को

आँख से गिरते गए, ऊँचाइयाँ बढ़ती गईं।"[8]

समाज में विभिन्न तरह से भेदभाव किया जाता है। जाति और धर्म के आधार पर भेदभाव तो है ही इसके साथ-साथ अमीरी ग़रीबी का भी भेदभाव दिखता है। कोई समाज, कोई व्यक्ति सहते-सहते जब थक जाता है तो क्रांति होती है, विस्फोट होता है, विद्रोह होता है।

'खामोश सी लगतीं मगर विस्फोट होगा एक दिन

ज्वालामुखी सी खुद के अंदर दाहक रहीं ये बस्तियां"[9]

क्रांति के संदर्भ में हम यह भी समझते चलें कि आखिर क्रांति का मतलब क्या है? सरदार भगत सिंह लिखते हैं 'क्रांति से हम लोगों का अभिप्राय समाज की व्यवस्था से है, जिसमें पतन का भय न हो तथा जिसमें श्रमिकों की राज सत्ता मान्य हो जाए और उसके फलस्वरूप विश्व-संघ मानवता को पूंजीवाद, दुख तथा युद्ध के विनाश से सुरक्षित कर दे -क्रांति शब्द से मानव जाति का अविछेद्य अधिकार है।"[10] क्रांति के संदर्भ में मार्क्सवाद की चर्चा खूब की जाती है। मार्क्सवादी आपस में एक-दूसरे को 'कामरेड' या 'साथी' शब्द से संबोधित करते हैं। वे एक दूसरे का अभिवादन 'लाल सलाम' कहकर करते हैं। उसी विचारधारा को दृष्टिगत रखते हुए रामदरश मिश्र का ये शेर देखिए-

'आग सी जलती दिखे है कागजों की पीठ पर

वह न कविता है लहू की, वह तो लाल सलाम है"[11]

वे इस तरह से कार्य करने पर बल देते हैं कि अपने तो अपने विरोधी भी प्रशंसा करने पर मजबूर हो जाएँ-

'दोस्तों की दाद तो मिलती ही रहती है सदा

आज दुश्मन ने कहा शाबाश तो अच्छा लगा"[12]

साहित्यकार की भी ज़िंदगी होती है। यदि वह सच्चा साहित्यकार है तो वह जनता और समाज को जागरूक भी करता है। रामदरश मिश्र परिस्थितियों को पहचानकर पहरुआ की भूमिका में आ जाते हैं। वे कहते हैं-

'यह रात भयानक है बड़ी जागते रहो

दहशत है द्वार-द्वार खड़ी जागते रहो"[13]

एक जमाने में साहित्यकार और साहित्य की महती भूमिका थी। वक़्त बदला और साहित्यकारों की

मानसिकता गुलामों वाली हो गई। वे उन पुराने दिनों को याद कारते हुए कहते हैं-'चलता था अदब सियासत के आगे-आगे लेकर मशाल

अब चलता है पीछे - पीछे जैसे चौपाये चलते हैं।"[14]

हमें पुलिस थानों से अधिक विद्यालयों की जरूरत है। उन्होंने मदरसे की अधिकता पर बल दिया है। आज भले ही मदरसों को गलत नजरिए से देखा जाता हो लेकिन मदरसे शिक्षा का केंद्र हुआ करते हैं-

'चले थे कल तलाश में किसी मदरसे की

परंतु बार - बार राह में थाने निकले"[15]

बार-बार थाने का मिलना यह सिद्ध करता है कि आज हम लोग शिक्षा से अधिक बल थाने को विकसित करने पर दे रहे हैं। जब व्यक्ति धीरे-धीरे बुढ़ापे की तरफ बढ़ता है तो उसके दोस्त केवल कोई व्यक्ति, पेड़, पौधे जानवर ही नहीं होते बल्कि मर्ज़ (बीमारियाँ) भी संगी-साथी बन जाता है-

'बन गए हैं साथी अब छोटे – बड़े कुछ मर्ज़ भी

इनसे बतियाता हुआ तय फसल करता हूँ मैं"[16]

जब व्यक्ति बूढ़ा होता जाता है तो अपने बचपन के दिनों को याद करता है। पीढ़ियाँ बदलती हैं तो बचपन के अर्थ भी बदलते हैं। एक जमाने में बचपन के खेल गुल्ली-डंडा हुआ करते थे आज बच्चे मोबाईल से ही खेलते हुए पाए जाते हैं-

'निकल पड़े हैं कहीं टांग घरों में बचपन

नई सदी के ये बच्चे तो सयाने निकले"[17]

हम लोग मनुष्य हैं और अपने आपको अशरफुल मखलूक़ात (सृष्टि शिरोमणि) कहलाने से पीछे नहीं हटते। हमारे अंदर अपना भला करने की प्रवृत्ति व्याप्त है लेकिन वे ऐसा नहीं सोचते।

'रीत न जाय किसी की गागर

अपना घर भरते डरता हूँ

लग जाए पथ में न किसी को

धीरे-धीरे पग धरता हूँ"[18]

इसी तरह से वे दहेज उत्पीड़न और मानवीय संवेदना पर बड़ी ही गंभीर और मार्मिक टिप्पणी करते हैं-

'उत्सवों में गूंज कर रोती हैं फिर लपटों के साथ

बेटियाँ जलती रहीं, शहनाइयाँ बढ़ती गईं"[19]

इसी तरह से वे शहरी जीवन, प्रकृति के प्रति चिंता, आत्मविश्वास व स्वाभिमान, नश्वर संसार, मृत्यु, साथ रहने की भावना, अमन-चैन की लालसा सहित हास्य व्यंग्य करते हुए भी अपनी बात रखते हैं। एक हास्य व्यंग्य को ज़रा देखिए

'मैंने तो किस्सा सुनाया था किसी शैतान का

आपको क्यों शक हुआ, यह आपके बारे में है"[20]

जहां तक भाषा का सवाल है, हमने हिंदी और उर्दू को दो अलग-अलग धर्मों को मानने वालों की भाषा स्वीकार कर लिया है। जबकि हक़ीकत कुछ और है। ग़ज़ल तो केवल उर्दू में ही लिखी जा सकती इस तरह की सोच रखने वालों की कमी नहीं है लेकिन इन सबके बीच जब हम रामदरश मिश्र को पढ़ते हैं तो पाते हैं कि ये सोच कितनी गलत है। आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर भी ग़ज़लें लिखी जा सकती हैं। वे लिखते हैं- 'मेरी तो कोशिश रही है कि बोलचाल की भाषा में अपने और परिवेश के सुख दुख और समय के सच को स्वर दे सकूँ।"[21] सच है कि उन्होंने ऐसा किया भी है।

यदि हम उनकी ग़ज़लों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को देखें तो उर्दू की शब्दावली, हिंदी की शब्दावली के साथ अंग्रेजी के शब्द भी आए हैं। 'अहसास', 'शाबाश', 'सियासत', 'खामोश', 'वहशी', 'रहबर', 'दुआएँ' खास तौर से उर्दू में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। इसी तरह से 'क्रूर', 'मनुष्य', 'याचना', 'द्वार-द्वार', 'रीत', 'पथ', 'आकुल', 'धरा', 'विस्फोट', 'ज्वालामुखी', 'माया', 'पदचाप' विशेष रूप से हिंदी में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। इसी तरह से हिंदी-उर्दू शब्दावली में 'कथागोई' शब्द है। उन्होंने इन सभी शब्दों का प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया है। इसके साथ साथ उन्होंने अंग्रेजी के शब्दों का भी इस्तेमाल किया है जैसे- 'फुटपाथ' इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामदरश मिश्र अपनी ग़ज़लों में सिर्फ प्यार-मोहब्बत और हवा-हवाई बातें नहीं करते हैं। वे गंभीरता के साथ समय – समाज देश दुनिया की समस्याओं पर लिखते हैं। भाषा पर भी वे बेबाकी से अपनी राय रखते हैं। सबसे खास बात यह है कि वे अपने लेखन पर अहंकार नहीं करते । ये एक अच्छे साहित्यकार की पहचान है।